कल्पवृक्ष

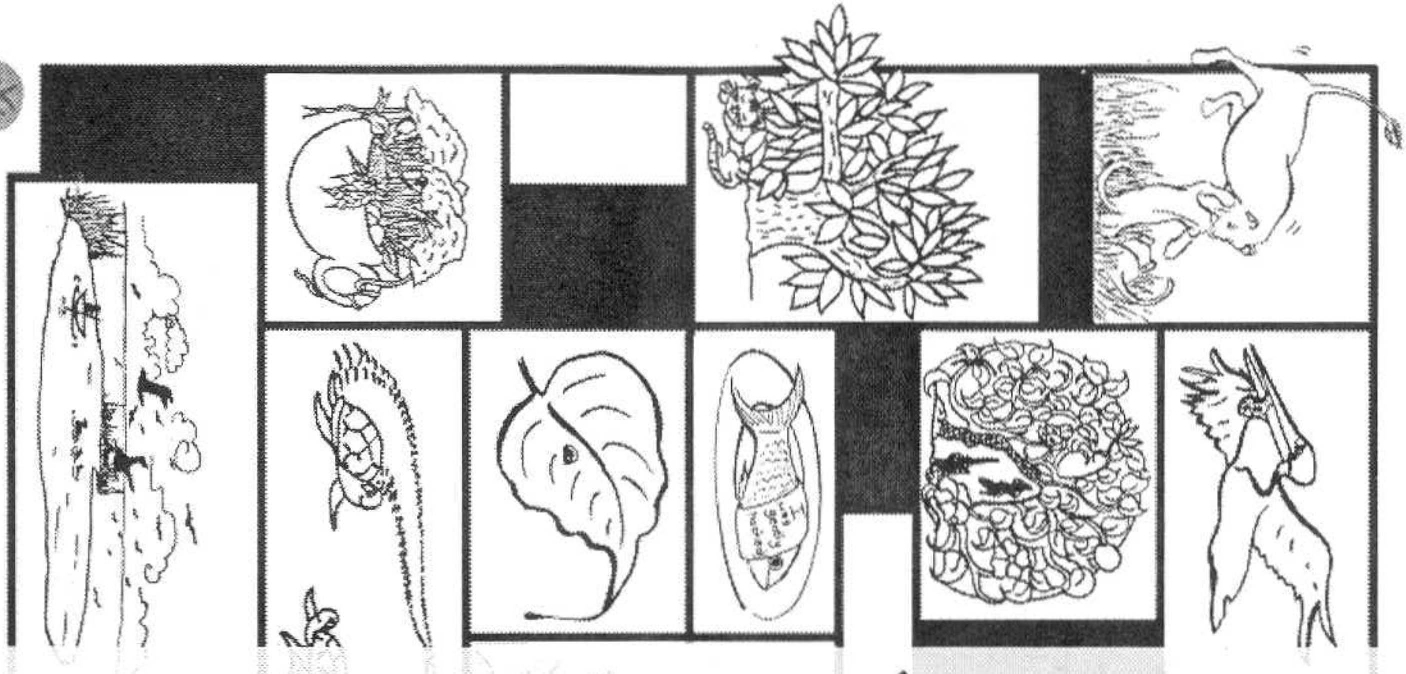

समुदाय व संरक्षण

समुदाय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

अंक १, नं.२, जुलाई २००७

विषयवस्तु

३ .... संपादकीय

३..विधान व नीति

वन्यजीव (संरक्षण) संशोधित अधिनियम, २००६ का मानवीय चेहरा

५.............................. उदाहरणात्मक अध्ययन

मंगलाजोड़ी -शिकार से संरक्षण तक का सफर

६ ....भारत के राज्यों से समाचार

अरुणाचल प्रदेश

- बुगुन और बुगुन लिओकिचला

असम

- मानस बायोस्फीयर रिज़र्व में हृदय परिवर्तन
- औपचारिक कानून व्यवस्था में परंपरागत कानून का स्थान

गुजरात

- खेतों पर शेरों का झुंड

केरल

- महिलाएं बाघ के रक्षा में
- औलिव रिडली कछुओं के संरक्षण का नया प्रयास

नागालैंड

- सेदेन्यू विलेज कम्यूनिटि बायोडायवर्सिटि रिज़र्व

उड़ीसा

- केन्द्रपाड़ा में मैनग्रोव का पुनर्जनन

१२ .... अंतर्राष्ट्रीय समाचार

- समुद्र से प्लेट तक एक सफर
- अंबोसली का नियंत्रण मसाई समुदाय के हाथ

१४ .... नए अंग्रेज़ी प्रकाशन

- 'हाओ मच शुड अ परसन कन्ज़्यूम? थिंकिंग थ्रू द ऐन्वायरनमैन्ट'
- 'इंडियाज़ वाईल्डलाईफ हिस्ट्री'
- 'वाटरस्केप्स'
- 'ईकोलौजिकल जरनीज़ : द साइंस एंड पौलिटिक्स आफ कन्ज़रवेशन इन इंडिया'

"समुदाय और संरक्षण" के दूसरे संकलन में आपका स्वागत है। वन्यजीवों और उनके आवास-स्थलों की दृष्टि से देखा जाए तो देश के सभी भागों से दुखद समाचार मिल रहे हैं। गीर के सिंह, असम में काज़ीरंगा के एक सींग वाले गैंडे और उड़ीसा के हाथी - सभी खतरे में हैं। भारतीय वन्यजीव संस्थान और राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण के आंशिक सर्वेक्षण के अनुसार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगड़, महाराष्ट्र और राजस्थान में बाघों की संख्या में ५० प्रतिशत तक की कमी हुई है। साथ ही, कृषकों व अन्य पारंपरिक समुदायों की भी कोई खास अच्छी खबर नहीं हैं। सैंकड़ों किसानों की आत्महत्या और एस.ई.ज़ैड. (SEZ) व विशालकाय विकास परियोजनाओं के चलते पूरे-पूरे गाँवों का विस्थापन हो रहा है।

वहीं दूसरी ओर, अनेक ऐसे समाचार हैं, जो दिल में आशा जगा देते हैं। देश भर में कुछ पूर्व-शिकारी, पूर्व-विद्रोही, आदिवासी महिलाएं, किसान, शोधकर्ता, वनविभाग के अफसर, मछियारे, स्थानीय संस्थान, राज्य सरकारों के अफसर व गैर-सरकारी संस्थाएं - भारत के जंगलों को बचाने के लिए हिम्मत हारे बिना लगातार प्रयास कर रहे हैं। इन प्रयासों से न केवल जंगल, पानी, पौधे, जानवर और वन्यजीव बल्कि हमारे विश्वास को भी पुनर्जीवन मिल रहा है। यह विश्वास कि हमारे देश में वाकई एक ऐसा आंदोलन है जो एक सतत जीवनयापन के लिए निरंतर संघर्ष कर रहा है। इन प्रयासों में देश के हर क्षेत्र और तबके के लोग शामिल हैं।

यह समझ कि स्थानीय लोगों के मानव अधिकारों का हनन करके वन्यजीव संरक्षण संभव नहीं है, अब गहराती जा रही है। संसद में 'अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकारों को मान्यता) विधेयक, २००६ का परित होना, इस दिशा में बढ़ाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। इस कानून में अनेक कमियां होने के बावजूद, हम आशा करते हैं कि इसके द्वारा स्थानीय मानवीय अधिकारों व संरक्षण को देखने वाली एक समग्र सोच को बढ़ावा मिलेगा और अन्य कानून व नीतियों में भी जरुरी परिवर्तन लाये जायेंगे ।

वन्यजीव (संरक्षण) संशोधित अधिनियम, २००६ का मानवीय चेहरा

हमारे पिछले अंक में हमने २००३ के वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम संशोधन की बात की थी। इसके तहत् २ नई श्रेणियां शामिल की गई थीं - सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र व संरक्षण क्षेत्र (Community Reserves and Conservation Reserves)। १९७२ के वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम का २००६ में एक और संशोधन किया गया है। इसमें हालांकि मुख्यतः बाघ अभ्यारण्यों की बात की गई है, परंतु अन्य अभ्यारण्यों व राष्ट्रीय उद्यानों की देखरेख व नियोजन में लोगों की भागीदारी पर भी इससे कुछ अच्छे असर होने की उम्मीद है। साल २००४ में, सरिस्का से बाघों के गायब होने की घटना के बाद प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने २००५ में 'टाईगर टास्क फोर्स' का गठन किया। इस कार्यदल को देश में चलाए जा रहे बाघ संरक्षण कार्यक्रमों का मुआयना कर बाघों की गिरती जनसंख्या के लिए हल सुझाने थे। इस कार्यदल के अनुसार, वन्यजीव संरक्षण के लिए स्थापित अभ्यारण्यों के नियोजन में लोगों की भागीदारी न होना व अभ्यारण्यों के द्वारा लोगों को होने वाली परेशानियां बाघों की घटती संख्या का एक मुख्य कारण हैं। स्थानीय लोगों के अधिकारों व आजीविकाओं और वन्यजीव संरक्षण की ज़रूरतों के बीच की खाई को औपचारिक रूप से कम करने के लिए इस कार्यदल ने कई सुझाव दिये जिनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं:

- वन विभाग में नए अफसरों व गार्डों की भर्ती को स्थानीय ग्रामवासियों के लिए आरक्षित कर दिया जाए। भर्ती के नियमों में बदलाव किये जाएं - जिसमें औपचारिक शिक्षा के बजाए जंगल के विषय में जानकारी व अनुभव को प्राथमिकता दी जाए। इसके अतिरिक्त स्थानीय लोगों की भर्ती के बाद उन्हें नौकरी के अंतर्गत प्रशिक्षण दिया जाए।
- अभ्यारण्यों, खासतौर पर बाघ आरक्षित क्षेत्रों में कार्यरत या उनके नज़दीक रहने वाले शिकारी समुदायों की पहचान की जाए और उनकी कला व जानकारी को उस इलाके की पारिस्थितिकीय जानकारी इकट्ठा करने के लिए इस्तेमाल किया जाए ।
- यदि प्रशासन पर्यटन के प्रबंधन के लिए सक्षम नहीं है तो स्थानीय समुदायों व कर्मचारी कल्याण संगठनों को शामिल करने के प्रयास किये जाएं ।
- अभ्यारण्यों के नज़दीक के और उनसे लगते हुए क्षेत्रों को स्थानीय समुदायों द्वारा छोटे स्तर की पर्यटन सुविधाएं बनाने के लिए आरक्षित किया जाए।
- अभ्यारण्यों के अंदर स्थित तीर्थ स्थानों से होने वाले मुनाफे को स्थानीय समुदाय के भले के लिए इस्तेमाल किया जाए।
- प्रौजेक्ट टाईगर निदेशालय को चाहिए कि वह निश्चित व समयबद्ध कार्यक्रम चलाए जिससे कि यह स्पष्ट हो सके कि अभ्यारण्य से किसको कितना फायदा होगा। ये ज़रूरी है कि इन आरक्षित क्षेत्रों से मिलने वाले फायदों का आंकलन कर उन सभी शहरों/क्षेत्रों/ज़िलों से मुआवज़ा लेने की व्यवस्था की जाए जिन्हें इनकी वजह से संरक्षित पानी व अन्य संसाधन मिलते हैं। इससे प्राप्त राजस्व को आरक्षित क्षेत्र प्राधिकरण व स्थानीय समुदाय के विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

इस रिपोर्ट ने काफ़ी वाद-विवाद व चर्चाओं को जन्म दिया - जिसमें से कुछ वास्तव में अत्यंत चिंताजनक थे। उनमें से एक यह भय है कि इन आरक्षित क्षेत्रों को खोल देने से इन पर अधिकारियों का जो थोड़ा बहुत नियंत्रण है वो भी खत्म हो जाएगा। और इसके कारण बचे-खुचे जंगल व वन्यजीव, बाघ के साथ, खत्म हो जाएंगे। यह एक ऐसा भय है जिसके कारण पिछले कई दशकों से लगातार संरक्षण की प्रणालियों, नियमों व कानूनों में सामाजिक विषयों को अनदेखा किया गया है।

वर्ष २००६ में, 'टाईगर टास्क फोर्स' के सुझावों को ध्यान में रखते हुए वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, १९७२ में संशोधन किया गया व वन्यजीव (संरक्षण) संशोधित अधिनियम, २००६ ने अस्तित्व लिया। इसमें मुख्य बदलाव धारा IV(b) और IV(c) में किए गए हैं, जिनमें राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण और बाघ व अन्य खतरे में पड़ी प्रजातियों से संबंधित अपराधों को नियंत्रित करने के लिए ब्यूरो स्थापित करने के निर्देश हैं। हांलांकि संशोधित अधिनियम अभी भी प्रत्यक्ष रूप से जन समुदायों के सहयोग से बाघों की रक्षा की बात नहीं करता है, पर इसमें इस ओर इशारा किया गया है कि औपचारिक वन्यजीव संरक्षण में 'टाईगर टास्क फोर्स' द्वारा उठाये गए मुद्दों को ध्यान में रखा जाए।

धारा 38 (V) (5) के अनुसार लोगों के किसी भी प्रकार के विस्थापन से पहले निम्नलिखित मुद्दों को जांच लेना आवश्यक है :

- कि अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों को मान्यता देने व निर्धारित करने, तथा उनकी भूमि व अधिकारों के अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी कर ली गई है।
- कि अधिकारियों ने इस क्षेत्र से वाक़िफ एक पारिस्थितिकी वैज्ञानिक और एक सामाजिक वैज्ञानिक की राय ली है। और साथ ही यह भी स्थापित किया जा चुका है कि स्थानीय वनवासी समुदायों की गतिविधियों से बाघ व उसके आवास स्थल को नुकसान होगा।
- कि अधिकारी इस निष्कर्श पर पहुँच चुके हैं कि स्थानीय समुदाय और वन्यजीवन के परस्पर रिस्ते बरकरार रखना नामुमकिन है।
- कि अधिकारियों ने प्रभावित होने वाले लोगों व ग्राम सभाओं को उचित सूचना देकर उनसे अनुमति प्राप्त कर ली है।

ये उस समय से बेहतर है जब बिना विस्तृत अध्ययन के ही आरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिये जाते थे। उम्मीद है कि

इस संशोधित अधिनियम के साथ ऐसे नियम और दिशानिर्देश बनाये जायेंगे जो इस अधिनियम में साझेदारी के पक्ष को मजबूत करते हुए नए दृष्टिकोण को लागू करने के लिए सहायक होंगे। इससे देश में बाघों के संरक्षण के लिए भी मदद मिलेगी। बाघ संरक्षित क्षेत्रों में एक अच्छी शुरुआत हो गई है - अब समय है कि इसी तरह के दृष्टिकोण में बदलाव राष्ट्रीय उद्यानों व अभ्यारण्यों में भी लाए जाएं।

स्रोत : टाईगर टास्कफोर्स की रिपोर्ट - "ज्वानिंग द डाट्स, द वाइल्ड लाईफ (प्रोटैक्शन) अमैंडमेंट एक्ट, २००६"

संपर्क : एरिका तारापोरवाला, संपादकीय पते पर

उदाहरणात्मक अध्ययन

मंगलाजोड़ी - शिकार से संरक्षण तक का सफर

चिलका झील, उड़िसा में स्थित, देश की सबसे बड़ी खारे पानी की झील है और वहाँ पर रहने वाले और प्रवासी पक्षियों के लिए एक सुरक्षित आश्रय है। यहां पर पाये जाने वाले पक्षियों में लिटिल कारमोरैंट *(Phalacrocorax niger)*, इंडियन कारमोरैंट *(Phalocrocorax fuscicollis)*, ग्रे हैरन *(Ardea cinerea)*, परपल हैरन *(Ardea purpurea)*, ग्रेट ईगरेट (*Casmerodius albus*), इंटरमीडिएट ईगरेट *(Mesophoyx intermedia)*, सिनेमन बिटर्न *(Ixobrychus cinnamomeus)*, पेन्टेड स्टौर्क *(Mycteria leucocephala)*, एशियन ओपनबिल *(Anastomus oscitans)*, लैसर व्हिसलिंग टील *(Dendrocygna javanica)*, व्हाईट ब्रैस्टेड वाटरहैन *(Amourornis phoenicurus)* और ब्राऊन क्रेक *(Amaurornis akool)* हैं। इस झील के किनारे में कई गांव बसे हैं और इन गांवों के कई लोग पक्षियों का शिकार करके ही अपनी रोज़ी-रोटी कमाते हैं। कुछ साल पहले मंगलाजोड़ी भी ऐसा ही एक गांव था।

वर्ष १९९६-९७ में चिलका के आस-पास रहने वाले कुछ लोगों ने 'वाईल्ड उड़ीसा' नाम का एक पर्यावरण संगठन बनाया। इन लोगों को पक्षियों के शिकार और उससे पक्षियों की दुर्लभ प्रजातियों को होने वाले नुकसान की चिंता थी। जिन लोगों ने ये संगठन शुरू किया था, उन्हें लगा कि इस संगठन के साथ काम करने से लोग शिकार छोड़ने के लिए प्रोत्साहित होंगे। हांलांकि शुरुआत में कुछ मुश्किलें आईं लेकिन इस संगठन के निरंतर प्रयास व लोगों की ज़िंदगी का हिस्सा बन कर काम करने से, वाईल्ड उड़ीसा व पक्षी संरक्षण को मंगलाजोड़ी में मित्र मिल ही गए। जब वन विभाग ने वाईल्ड उड़ीसा को जल पक्षी संरक्षण में भागीदारी के लिए आमंत्रित किया तो इस प्रयास को और भी सहयोग मिला और उसी वर्ष मंगलाजोड़ी में पक्षियों के संरक्षण के लिए श्री महावीर पक्षी सुरक्षा समिति का गठन हुआ।

वाईल्ड उड़ीसा व श्री महावीर पक्षी सुरक्षा समिति मिलजुलकर झील का निरीक्षण करके, पक्षियों के अंडों की चोरी व शिकार को रोकते हैं। साथ ही वे स्कूल के बच्चों को पक्षियों के अंडे देने वाली जगहों पर ले जाकर उनमें पक्षियों के विषय में जागृति बढ़ाने का काम करते हैं। इसके अतिरिक्त, इन दोनों संगठनों के सदस्य मुख्य वन्यजीव संरक्षक, सिंचाई विभाग व चिलका डैवलपमैंट ऑथोरिटी के अफसरों से मिलकर जल पक्षी के अंडे देने के स्थलों की विशेष सुरक्षा करते हैं। साथ ही, वे बाम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर नए प्रजनन स्थलों की पहचान करने में सहायता करते हैं।

इन प्रयासों को जल्दी ही सराहना मिली। वर्ष २००१ में, श्री महावीर पक्षी सुरक्षा समिति को राज्य सरकार द्वारा 'पक्षी बंधु' पुरस्कार दिया गया। उसी साल इस अभियान को चिलका डैवलपमेंट ऑथोरिटि (सी.डी.ए.) का भी सहयोग मिला। सी.डी.ए. ने पक्षी व्याख्या केन्द्र, मचान बनाने, प्रकृति की शिक्षा देने के लिए पगडंडियों की पहचान करने, और अतिथियों के बैठने के लिए रास्ते में बेंच व घाट बनाने के लिए आर्थिक सहयोग दिया है।

सी.डी.ए. ने मंगलाजोड़ी व चिलका को जोड़ने वाली नहर को गहरा करने के लिए भी सहयोग दिया है जिससे कि नांवें आराम से आ-जा सकें। वर्ष २००२ में एक (ईको) पर्यटन कार्यक्रम शुरू किया गया जिसके तहत् कई पर्यटक आए। उड़ीसा का पर्यटन विभाग भी लोगों की आमदनी

बढ़ाने में अपनी तरफ से सहयोग कर रहा है। विभाग की ओर से मंगलाजोड़ी व पड़ोसी गांव सुंदरपुर के ५० लोगों को ईको - गाईड बनने का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। वाईल्ड उड़ीसा भी समिति के लोगों की मदद करने की भरपूर कोशिश करती है। उन्होनें लकड़ी की कुछ कश्तियां खरीदी हैं, जिनमें समिति के सदस्य झील का निरीक्षण करते हैं। स्थानीय लोग, जो संरक्षण कार्य में शामिल हैं, इन कश्तियों से नियंत्रित मात्रा में मछली भी पकड़ सकते हैं। वाईल्ड उड़ीसा के साथ मिलकर स्थानीय लोगों ने एक १.५ कि.मी. क्षेत्रफल की पहचान की है। ये क्षेत्र चिल्का का हिस्सा है और गांव के नज़दीक पड़ता है। ''मंगलाजोड़ी घेरा'' कहलाने वाले इस क्षेत्र के चारों तरफ एक मिट्टी का बांध बनाया गया है। इस क्षेत्र में लगभग साल-भर पानी रहता है और गांव के लोग ध्यान रखते हैं कि इसमें पक्षी सुरक्षित रहें। वाईल्ड उड़ीसा व समिति के लोग, वन्यजीव विभाग व सिंचाई विभाग से बात कर रहे हैं कि बारिश के बाद मार्च महीने तक इसमें पानी बरकरार रखा जा सके। स्थानीय पक्षी सुरक्षा समिति, वाईल्ड उड़ीसा व उड़ीसा वन विभाग मिलकर कोशिश कर रहे हैं कि पक्षियों की रक्षा का यह प्रयास पड़ोसी गाँव भी अपना लें। जिससे कि चिल्का के हर ओर सुरक्षा का एक घेरा बन जाए।

ये सब तो अच्छे समाचार हैं, पर इस प्रयास को बरकरार रखने के लिए अभी कई चुनौतियों को पार करना होगा। मंगलाजोड़ी पर बाहरी प्रभावों का काफी असर है और पर्यटकों की संख्या बढ़ जाने से पक्षियों के आने-जाने पर और उनके प्रजनन पर असर पड़ सकता है। पक्षी सुरक्षा समिति व वाईल्ड उड़ीसा इन खतरों से वाक़िफ हैं और उन्होनें कई ऐसे नियम बनाये हैं जिससे कि कोई भी इस क्षेत्र का नाजायज़ या ज़रूरत से अधिक इस्तेमाल न कर सके। इन नियमों को समय-समय पर आवश्यकतानुसार बदलाव करते रहना होगा, जिससे कि संरक्षण के उद्देश्य सफल हो सकें। सभी संस्थाओं को ध्यान रखना होगा कि जो पूर्व-शिकारी आज संरक्षण में जुड़े हैं, उन्हें नियमित रूप से आमदनी मिलती रहे। नहीं तो उनका संरक्षण के इस प्रयास से जुड़े रहना मुश्किल हो जाएगा।

वाईल्ड उड़ीसा व पक्षी सुरक्षा समिति को कई आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसके चलते वे कई योजनाएं लागू नहीं कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त नाँवों, दूरबीन, दस्तावेज़ीकरण आदि के लिए उपकरणों की कमी भी उनके सामने एक बड़ी बाधा है। लंबे समय तक इस क्षेत्र की सुरक्षा बरकरार रखने के लिए आवश्यक है कि इस प्रयास को कुछ कानूनी सहायता भी दी जाए। हालांकि, किसी भी प्रकार की कानूनी सहायता देते समय ये ध्यान रखना होगा कि मंगलाजोड़ी के पक्षी स्थानीय लोगों के प्रयास के बिना सुरक्षित नहीं रह सकते। अतः किसी भी निर्णय में स्थानीय लोगों की रज़ामंदी और भागीदारी अत्यंत आवश्यक है।

ऐसे क्या कारण हैं कि, वे शिकारी जो पहले खूब पैसा कमा लेते थे, आज कम आमदनी होने पर भी पक्षियों का संरक्षण कर रहे हैं? कुछ पूर्व-शिकारियों के अनुसार, इसके कई कारण हैं जैसे किः

- लोगों को गर्व है कि वे अपनी उस पुरानी परंपरा को जीवंत कर पाए हैं जिसके अनुसार इस झील को नुक्सान पहुंचाने वाले काम नहीं किए जा सकते थे। पारंपरिक रूप से यह माना जाता था कि झील कालीजाई देवी की है और झील को नुक्सान का मतलब है देवी की अवमानना करना।
- अपने इस प्रयास के कारण उन्हें स्थानीय राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय सराहना मिली जो उनके लिए गर्व की बात है।
- आज उन्हें छुपकर गैर-कानूनी कार्य करने की आवश्यकता नहीं है।
- पर्यटकों के आने के कारण आमदनी बढ़ने के अच्छे आसार हैं।

इन सभी प्रेरणादायक कारणों और इनसे मिलने वाले संतोष को ध्यान में रख कर ही संरक्षण के इस प्रयास को लंबे समय तक सफलता मिल सकती है।

स्रोत : कल्पवृक्ष द्वारा संकलित की जा रही समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों की डायरेक्ट्री।

संपर्क : नंदकिशोर भुजबल, वाईल्ड उड़ीसा, पोस्ट टांगी, ज़िला खुरदा, उड़ीसा।

फोन : ०६६३७१५३८५७

भारत के राज्यों से समाचार

अरुणाचल प्रदेश

बुगुन और बुगुन लिओकिचला

अरुणाचल प्रदेश में स्थित 'ईगलनैस्ट वाईल्डलाईफ सैंक्चुरी' में अत्यंत ही जैव विविध वन पाए जाते हैं। यहां ४०० पक्षी प्रजातियां रिकॉर्ड की गई हैं। डा. रमन आत्रेय और उनकी टीम इस क्षेत्र में कई सालों से काम कर रहे हैं। उन्होंने कई दुर्लभ प्रजाति के मेंढकों व अन्य रेंगने वाले जीव भी रिकॉर्ड किये हैं। वर्ष २००६ में, आत्रेय को एक नई पक्षी प्रजाति मिली जिसका नाम उन्होंने बुगुन लियोकिचला रखा। यह नाम इस क्षेत्र में रहने वाले बुगुन समुदाय को समर्पित है।

डा. आत्रेय के अनुसार यहां लोगों की सीमित जनसंख्या इस अभ्यारण्य में जंगल के घनत्व का मुख्य कारण रहा है। लेकिन पिछले एक दशक में जनसंख्या में बढ़ाव के कारण यहां जंगलों की स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अपने आसपास के बदलावों को देखते हुए, कुछ बुगुन लोगों ने वन संरक्षण के लिए सक्रिय कदम उठाये हैं। यह वही क्षेत्र हैं जहां बुगुन लियोकिचला पाई गई है।

डा. आत्रेय की सहायता से अब स्थानीय बुगुन समुदाय द्वारा संचालित एक कानूनी व औपचारिक संस्था स्थापित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। इससे इस क्षेत्र का संरक्षण हो सकेगा और ईगलनैस्ट में पर्यटन को भी नियंत्रित किया जा सकेगा। इस प्रयास का मुख्य उद्देश्य है कि :

- नियंत्रित पर्यटन से जंगल व स्थानीय समुदाय दोनों को फायदा हो
- स्थानीय लोगों को उचित प्रशिक्षण दिया जा सके
- स्थानीय व्यवसाय के स्रोतों को बढ़ावा मिले
- पर्यटकों से संरक्षित क्षेत्र में जाने के लिए एक शुल्क लिया जाए - वैसे ही जैसे सरकार अभ्यारण्यों के लिए लेती है। इससे इस बात को मान्यता मिलेगी कि स्थानीय लोगों को अपने आस-पास के संसाधनों का संरक्षण करने के लिए न सिर्फ सहायता बल्कि आर्थिक लाभ भी मिलना चाहिए।

स्रोत : स्वर्णा.वी. व एस. रामाकृष्णन, 'मैजिकल ईगलनैस्ट' द हिंदु - ऑनलाईन संस्करण, ०१/०४/२००७ व डा. रमन आत्रेय के साथ ई-मेल सम्पर्क जून २००७.

सम्पर्क : डा. रमन आत्रेय, नैशनल सैन्टर फार रेडियो ऐस्ट्रेफिजिक्स, (टाटा इन्स्टिट्युट ऑफ फन्डामैन्टल रिसर्च), पोस्ट बैग-३, पुणे युनिवर्सिटी, पुणे ४११००७, महाराष्ट्र, भारत।

फोन : ०२०-२५६६१३८४/८५

फैक्स : ०२०-२५६६२१४६

ईमेल : rathreya@ncra.fifr.res.in, raman.athreya@gmail.com

असम

मानस बायोस्फीयर रिज़र्व में हृदय परिवर्तन

मानस बायोस्फीयर रिज़र्व में कम से कम ५५ स्तनधारी, ५० रेंगनें वाले व ३ जल-थल में रहने वाले जीवजंतुओं की प्रजातियां पाई जाती हैं। इसमें से २१ प्रजातियां भारतीय वन्यजीव संरक्षण कानून के 'शिड्यूल १' सूचि में हैं। इस सूचि में देश भर की दुर्लभ जातियों का नाम दर्ज़ है। यहां पाई जाने वाली कम से कम ३३ प्रजातियां अत्यंत दुर्लभ व लुप्त होने की स्थिति में हैं। यहां पाई जाने वाली कई प्रजातियां विश्व में और कहीं नहीं पाई जाती हैं। बाघ *(Panthera tigris)*, आसाम रूफ्ड टरटल *(Kachuga sylhetensis)*, गोल्डन लंगूर *(Trachypithecus geei)*, हिस्पिड हेयर *(Caprolagus hispidus)*, पिग्मी हौग *(Sus salvanius)*, और एशियाई जंगली भैंस *(Bubalus*

arnee) यहां पाए जाते है। पक्षियों की ३८० प्रजातियां यहां रिकॉर्ड की गई हैं, जिनमें ग्रेट हार्नबिल *(Buceros bicornis)* भी एक है। यहां संकटग्रस्त पक्षी प्रजाति बंगाल फ्लोरिकन *(Houbaropsis bengalensis)* भी बड़ी संख्या में पाए जाते हैं।

१९८० के दशक से चले आ रहे राजनैतिक असंतोष का असर मानस बायोस्फीयर रिज़र्व पर भी पड़ रहा था। राजनैतिक विद्रोहियों, लकड़ी के तस्करों व शिकारियों की मौजूदगी के कारण वनाधिकारी रिज़र्व की सुरक्षा का काम करने में असमर्थ हो रहे थे। वर्ष २००३ के बाद से स्थिति में तब कुछ सुधार आया जब "बोड़ोलैंड टैरिटोरियल काउन्सिल" का गठन हुआ। और फिर २००६ में, जब बोड़ोलैंड फौरेस्ट प्रोटैक्शन फोर्स (ब.फ.प्र.फ.) का गठन हुआ। ब.फ.प्र.फ. बोड़ोलैंड टैरिटोरियल काउन्सिल, असम वन विभाग व बायोस्फीयर रिज़र्व में रहने वाले बोड़ो समुदाय के लोगों के बीच की एक साझेदारी है। लगभग १०० स्थानीय लोग असम के इन पश्चिमी जंगलों की सुरक्षा करने के लिए ब.फ.प्र.फ. के सदस्य बने हैं। ब.फ.प्र.फ. ने बड़ी संख्या में शिकारियों व तस्करों से बंदूकें, बैलगाड़ियां और लकड़ी ज़ब्त की है। लोगों के इस प्रयास का संयोजन एक स्थानीय व्यक्ति राजन इस्लारी करते हैं।

बोड़ो समुदाय ने पर्यटन (ईको-टुरिज़्म) के ज़रिये आमदनी चलाने का निर्णय लिया है, जिसके तहत् वे अपने जंगलों की सुरक्षा भी कर रहे हैं। वर्ष २००३ में उन्होंने 'मानस माओज़ेजैन्ड्री ईकोटूरिज़्म सोसायटी' का गठन किया। यह सोसायटी बाघ संरक्षित क्षेत्र का निरीक्षण करती है और शिकारी व लकड़ी के तस्करों से जंगल को बचाती है। सोसायटी ने जन-जागृति कार्यक्रम भी चलाए हैं, जिससे कि बंगाल फ्लौरिकन *(Houbaropsis bengalensis)* के विषय में लोगों की जानकारी बढ़े व वे उसे नुकसान न पहुंचायें। इसके अतिरिक्त सोसायटी मानास के अंदर काकलाबाड़ी में, जहां पर्यटक फ्लौरिकन को देखने के लिए आते हैं, एक पर्यटक गृह भी चला रही है। इस शांतिपूर्ण बदलाव के पीछे कई कारणे हैं और यह निष्चित है कि इस प्रयास का विस्तृत अध्ययन से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

स्रोत : अनुराधा शर्मा लखोटिया, 'मानस पोचर्स टर्न प्रोटैक्टर्स - बोड़ोस गिव अप द गन टु कन्ज़र्व एंड प्रमोट वाईल्ड लाईफ सैंक्चुरी', द टैलिग्राफ, १०/०३/२००५
व 'इंडियन विलेजर्स टेक बैक द फौरेस्ट',
www.communityconservation.org, cc update, winter 2007, Volume 18 Number 1
व सुमित के सेन, 'मानस नैशनल पार्क',
www.kolkatabirds.com, November 2005.

औपचारिक कानून व्यवस्था में परंपरागत कानून का स्थान

जीन कैम्पेन ने परंपरागत ज्ञान के संरक्षण के संदर्भ में परंपरागत कानूनों की समझ के लिए, आसाम के करबी आंगलौंग ज़िले में पामाकुची गांव में रहने वाले टीवा समुदाय के परंपरागत कानूनों का अध्ययन किया।

अध्ययन में पाया गया कि टीवा लोग हर जीवन को पूज्य मानते हैं और यह मानते हैं कि उनके आस-पास के सभी जीव व निर्जीव वस्तुओं में आत्मा (जियु) का वास होता है। अतः स्थानीय पक्षी, मछलियां, कीड़े, पेड़ यहां

तक कि जल, चट्टानें, पहाड़ व जंगल और इनमें वास करने वाली आत्मा इस जियु के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। इस मान्यता के कारण टीवा समुदाय का अपने आस-पास के वातावरण के साथ आदर व संयम का रिश्ता है। उदाहरण के लिए उनका ये मानना है कि पहाड़ी झरने में निवास करने वाली आत्मा 'खरीन' में ऐसी शक्तियां हैं जो झरने को प्रदूषित या शोर से नुकसान पहुंचाने वाले व्यक्ति पर बीमारी व बुरे प्रभाव डाल सकती है। इस मान्यता को झरने को नुकसान न पहुंचाने के लिए बनाया गया एक परंपरागत नियम माना जा सकता है। ऐसी ही दूसरी मान्यता है कि बांस के झुरमुटों में वास करने वाली आत्मा 'फितरिस' का आदर करना ज़रूरी है। इसके कारण लोग बांस को नियंत्रित रूप से इस्तेमाल करते है। जंगल में कई ऐसे पूज्य स्थल हैं, जिन्हें 'थांस' कहा जाता है, और जहां संसाधनों के उपभोग पर कड़ा नियंत्रण है।

सदियों से चले आ रही इन मान्यताओं व संसाधनों के नियंत्रित उपयोग ने आज कड़े सामाजिक नियंत्रण का रूप ले लिया है। इसी सामाजिक नियंत्रण को परंपरागत कानूनों का दर्ज़ा प्राप्त है क्योंकि इसे समुदाय के सभी लोग मानते हैं और इन्हें गांव सभा द्वारा सख्ती से लागू किया जाता है। इन कानूनों की प्राकृतिक संरक्षण में भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन समय के साथ-साथ इन परंपरागत कानूनों की आवश्यकता कम होती जा रही है, खासकर क्योंकि औपचारिक कानून व्यवस्था इनको कोई मान्यता नहीं देती। ज़रूरी है कि राज्य व केन्द्रीय स्तर की न्याय प्रणाली इन परंपरागत कानूनों को मान्यता दे। इससे इनकी जैव विविधता व उससे जुड़े परंपरागत ज्ञान एवं आजीविकाओं के संरक्षण में जो इसकी भूमिका रही है वह बनी रहेगी।

स्रोत : सुमन सहाय और इन्द्राणी बरपुजारी, 'टीवा लॉ वर्सेस स्टेट लॉ', सिविल सोसाईटी, फरवरी २००७

गुजरात

खेतों पर शेरों का झुंड

पूरे विश्व में एकमात्र गुजरात के गीर वन में एशियाई सिंह *(Panthera leo)* पाए जाते हैं। जगह सीमित होने के कारण, अक्सर ये सिंह खेतों में आ जाते हैं जिससे स्वभाविक तौर पे मानव-जानवर मुठभेड़ की स्थिति पैदा हो जाती है। खुले कुओं में सिंहों का गिर जाना या चोट पहुंचना आम घटनाएं हो गई हैं। बाबरीवीड़ी की ये कहानी, इस मानव-जानवर रिश्ते को एक नया मोड़ देती है।

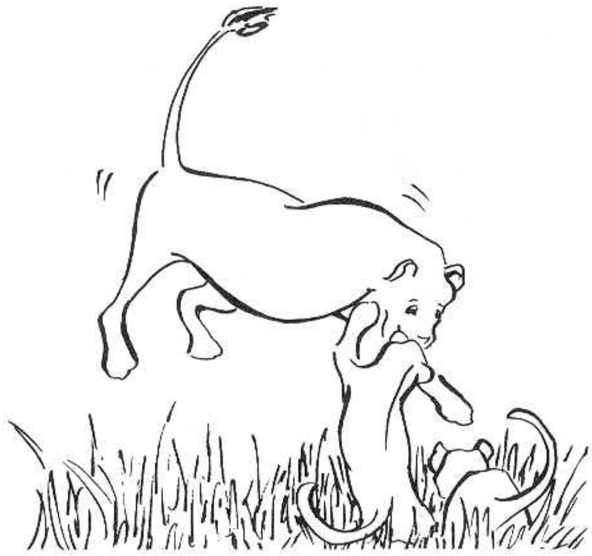

आरक्षित वन गीर अभ्यारण्य से १५ कि.मी. की दूरी पर बाबरीवीड़ी स्थित है। यह १५०० है. का घास वाला क्षेत्र है जो सिंह के रहने व प्रजनन के लिए उपयुक्त आवास-स्थल है। इसके अतिरिक्त इस आरक्षित वन के किनारे के बाबरा, पंकावा, चुलाड़ी, पिठिया, धर्मपुर, जुनेर, वांदखड़ ओर इटाली गांवों के किसान इस शाही जानवर के संरक्षण में सक्रिय रूप से जुड़े हैं। शिकारियों से इनकी रक्षा व अपने खेतों पर रहने देने के साथ-साथ इन किसानों ने पानी के टैंक भी खोदे हैं, जिससे कि सिंह पानी पी सकें। जब शेर कुओं में गिर जाते हैं तो स्थानीय युवक उन्हें निकालकर वापस जंगल में छोड़ने में मदद करते हैं।

बाबरा गांव के सरपंच कालाभाई पिठिया का परिवार इस क्षेत्र में खेती करता है। उनका कहना है कि ५ साल पहले कुछ शेरों का एक झुंड उनके गांव में घुस गया था और तब से गांव में ही रह रहा है। इन स्थायी निवासियों के अतिरिक्त, सिंहनियां यहां आकर बच्चों को जन्म देती हैं व उनका पालन-पोषण करती हैं। उनका ये भी कहना है कि हाल ही में, जब शेरों के शिकार के हादसों का पता चला, तो ८ पड़ोसी गांवों के लोगों ने शेरों की सुरक्षा के लिए समितियां भी बनाईं।

किशोर कोटेचा, जंगल व चिड़ियाघर में एशियाई सिंह के संरक्षण में खास रुचि रखते हैं। उनका कहना है कि गांव वालों द्वारा एशियाई सिंह की सुरक्षा की प्रवृति नई नहीं है यह सन १८५० में नवाबों के समय से चली आ रही एक पुरानी परंपरा है।

स्रोत : 'बाबरीवीड़ी अ मेटरनिटी होम फॉर लायोनैसस', इंडियन एक्सप्रैस, १२/५/२००७

संपर्क : किशोर कोटेचा, वाईल्डलाईफ कन्जरवेशन ट्रस्ट ऑफ इंडिया, १२८, स्टार प्लाजा, फूलछाब चौक, राजकोट-३६० ००१

फोन : ०२८१-२४४४०७४, २२६४४५५, ०९८२४०६२०६२

ई-मेल : info@asiaticlion.org

केरल

महिलाएं बाघ के रक्षा में

पेरियार टाइगर रिज़र्व में चल रहा प्रयास भारत में लोगों की भागीदारी से चलने वाले संरक्षण के कार्यक्रमों में एक सफल उदाहरण है। यह कार्यक्रम विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से "इंडिया ईकोडैवलपमैंट कार्यक्रम" के अंतर्गत चलाया गया। इसका मुख्य उद्देश्य था पार्क व लोगों के बीच उभरी समस्याएं और जंगल व अन्य जीव-जंतुओं पर पड़ने वाले दबावों को कम करना।

रिज़र्व के किनारे के गांवों में मन्नस, पनियन, ऊराली, मालमपनदारन और माला आर्यन समुदायों के आदिवासी रहते हैं। इनमें से ६० महिलाओं ने 'बसंतसेना' के नाम से खुद को संगठित किया और वे अपने काम, लघु उद्यम, परिवार व बच्चों के व्यस्त काम-काज से समय निकालकर वनों की रक्षा करती हैं। ६ औरतों के जुटों में, सुबह ११ बजे से शाम ५ बजे तक वे जंगल की निगरानी करती हैं और ध्यान रखती हैं कि बाघ व उसका घर सुरक्षित रहे।

पहले शिकारी रह चुके लोग भी आज संरक्षण के काम में जुड़े हैं, जो गाईड बनकर पर्यटकों को स्थानीय पेड़-पौधों व जानवरों के अपने ज्ञान से रिझाए रखते हैं। जौंकों से बचने के लिए मोज़े ओर दूरबीन किराए पर देकर भी वे कुछ पैसे कमा लेते हैं। इन सब कार्रवाईयों से जमा पैसे एक समुदाय विकास निधि में रखे जाते हैं, जिससे सभी सदस्यों को मासिक वेतन दिया जाता है।

वर्ष २००४ में, जब इंडिया ईको डैवलपमैन्ट प्रौजेक्ट खत्म हो गया, तो वहां के अधिकारियों और लोगों ने मिलकर पेरियार फाउन्डेशन का गठन किया। जंगलों के पुनर्जनन के अतिरिक्त, इन प्रयासों के कारण वन्यजीवन, स्थानीय लोगों की आमदनी और उनमें गर्व व सामाजिक सुरक्षा की भावना में बढ़ोतरी हुई है। यह सफलता केरल के अन्य संरक्षित क्षेत्रों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन गई है।

स्रोत : सुशीला नायर, 'विमैन, एक्स-पोचर्स शील्ड टाईगर', बैस्ट ऑफ सिविल सोसाइटी, तीसरी वर्षगांठ संकलन

औलिव रिडली कछुओं के संरक्षण का नया प्रयास

कोज़ीकोड़ व कासरगोड़ जिलों में स्वयंसेवकों द्वारा कछुओं के अंडों के संरक्षण के प्रयास से प्रोत्साहित होकर नवम्बर २००६ मे मुझप्पीलंगड़ में भी कछुओं के अंडों के संरक्षण के लिए एक जगह बनाई गई। यह मुझप्पीलंगड़ ग्राम पंचायत, 'एडवैंचर अकैडमी' (केरल राज्य के युवा कल्याण बोर्ड के अंतर्गत) और एक स्थानीय संस्था, थीरम सेना का संयुक्त प्रयास है। इसके अंतर्गत औलिव रिडली

कछुओं व अंडों से निकले उनके बच्चों का संरक्षण किया जाएगा।

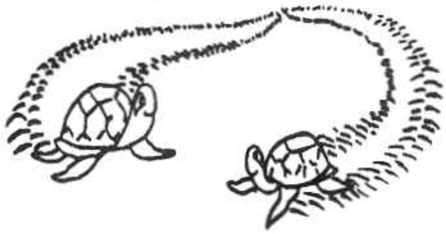

अपने पहले प्रयास में, इन्होंने दिसम्बर में ८० समुद्री कछुओं के अंडे समुद्रतट से इकट्ठे किए। लगभग २ महीनों में, ६० बच्चों को समुद्र में वापस छोड़ा गया। ज़िलाध्यक्ष इशिता रॉय, पंचायत अध्यक्ष वी. प्रभाकर और स्वीडन व फ्रांस से आए कुछ पर्यटकों समेत यह दृश्य लगभग ३०० लोगों ने देखा।

स्रोत : स्टाफ रिपोर्टर, 'टरटल हैचलिंग्स इमर्ज फ्रॉम हैचरी', द हिंदू, १२/२/२००७

संपर्क : नैशनल एडवेंचर अकैडमी, मुझप्पीलंगड़ बीच, कन्नूर ज़िला, केरल।

नागालैंड

सेदेन्यू विलेज कम्यूनिटि बायोडायवर्सिटि रिज़र्व

नागलैंड के कोहिमा ज़िले में सेदेन्यू गांव कभी विविध प्रकार के पेड़-पौधों व जानवरों से भरपूर होता था। लेकिन व्यापक झूम खेती (जिसमें पेड़ों को काटकर, जलाकर खेती की जाती है), बिना नियंत्रण के लकड़ी कटान और शिकार के कारण इस क्षेत्र में वन्यजीवों व जैवविविधता की भारी कमी आई है।

गांव के पुराने लोग कई ऐसी प्रजातियों के बारे में बताते हैं, जो अब इस क्षेत्र से लुप्त हो चुकी हैं जैसे, हूलौक गिब्बन *(Hylobates hoolock)* और ग्रेट हौर्नबिल *(Buceros bicornis)*। लेकिन अभी भी काकड़ *(Muntiacus muntjak)*, हिमालयी काला भालू *(Selenarctos thibetanus)*, सांभर *(Cervus unicolor)*, जंगली सूअर *(Sus scrofa)* और पक्षियों की कई प्रजातियां यहां पाई जाती हैं।

वर्ष २००१ में, सेदेन्यू ग्राम परिषद ने लगभग ८ वर्ग कि. मी. क्षेत्र को आरक्षित कर उसे ''सेदेन्यू ग्राम वन्यजीव संरक्षित क्षेत्र'' या ''सेदेन्यू थ्यू तेहेन केन्तसेन लोज्यू'' का नाम दिया। गांव के कुछ निवासी, जो सरकारी अफसर थे, गांव के बुजुर्गों के साथ चर्चा कर संरक्षण का यह निर्णय लिया। गांव के बुजुर्ग तुरन्त ही क्षेत्र के वन्यजीवन की घटती हुई दशा को समझ गए क्योंकि उन्हें खुद भी इसका अहसास था।

बाद में, इस रिज़र्व से लगते हुए ४ वर्ग कि.मी. क्षेत्र को भी वन्यजीव आरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया और उसका नाम ''सेदेन्यू विलेज कम्यूनिटि बायोडायवर्सिटि रिज़र्व'' रखा गया। इस रिज़र्व में जो क्षेत्र शामिल किया गया वह लोगों की व्यक्तिगत संपत्ति थी जिसमें से वे जलाऊ लकड़ी और अन्य संसाधन लेते थे। हालांकि पहले इन लोगों ने इसमें आपत्ति जताई, ग्राम परिषद ने उन्हें लोकहित में यह ज़मीन दान करने के लिए मना लिया। इसके बदले में वन विभाग ने वन विकास प्राधिकरण के कोष से उन लोगों को गैस दिलवाई जिन्हें इस प्रयास के कारण जलाऊ लकड़ी का नुकसान हुआ था।

आरक्षित क्षेत्र के मामलों की देखरेख के लिए एक समिति का गठन किया गया है। मुख्य (core) क्षेत्र को पूर्णतया मानवीय प्रभावों से मुक्त रखा गया है। बीच के बफर क्षेत्र में खेती करने की इजाज़त है पर लकड़ी काटने, शिकार, मछली पकड़ने और जानवरों को पकड़ने पर पूरी तरह से प्रतिबंध है। इसके साथ समिति ने पशुओं के प्रजनन के

समय में पूरे गांव में शिकार पर प्रतिबंध लगाया है। यह प्रतिवर्ष मार्च से सितम्बर के बीच लागू रहता है। साथ ही, 'तेशॉन' सांभर के शिकार पर सालभर प्रतिबंध रहता है, क्योंकि यह अत्यधिक शिकार के कारण इस क्षेत्र से लुप्त होने के कगार पर है।

समिति ने बोर्ड लगाकर आरक्षित क्षेत्र और गांव के क्षेत्र को चिन्हित किया है। यहां पर प्रचलित स्थानीय पेड़ प्रजातियों का पौधारोपण और जंगली जानवरों के लिए कुदरती कुओं को खोद कर पीने के पानी की व्यवस्था की है। समिति प्रतिबंध के आदेशों को लागू करती है, गांव में वन्यजीव संरक्षण विषय पर गोष्ठियों का आयोजन करती है और पड़ोसी गांवों के साथ मिलकर वन्यजीव संरक्षण के लिए काम कर रही है।

स्रोत : कल्पवृक्ष द्वारा संकलित की जा रही समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्रों की डायरेक्ट्री और ग्वासिनलो थौंग के साथ ई-मेल संपर्क, मार्च २००७

संपर्क : श्री. जी. थौंग, (वाईल्डलाईफ वार्डन, सेदेन्यू गांव), सह निर्देशक (एन.सी.ई.), ग्रामीण विकास निदेशालय, कोहिमा, बायावू हिल, पोस्ट बॉक्स-२३२, नागालैंड ७९७००१

फोन : ०३७०-२२७००३३ (कार्यालय) ०३७०-२१००२०२, २२७०६७४ (आवास) ०९४३६०००४१७ (मोबाईल)

ई-मेल : gwasinlo@yahoo.com

उड़ीसा

केन्द्रपाड़ा में मैनग्रोव का पुनर्जनन

उड़ीसा के केन्द्रपाड़ा ज़िले में भीतरकनिका वन्यजीव अभ्यारण्य से लगकर बसे समुद्रतट के गांव के स्थानीय लोग काफी समय से झींगा मछली पकड़ने वालों से अपनी सामुदायिक भूमि वापस लेने का संघर्ष कर रहे हैं। ये झींगा मछली पकड़ने वाले बाहर से आकर गांव में बस गए हैं और उन्होंने अपने झींगे की खेती के लिए बड़े पैमाने पर मैनग्रोव वनों को नुकसान पहुंचाया है। इन लोगों को इस क्षेत्र की दीर्घकालीन पारिस्थितिकीय या सामाजिक सततता में कोई दिलचस्पी नहीं है। वे इस स्थान को केवल बड़े मुनाफे कमाने की दृष्टि से ही देखते हैं। १९९९ के महा चक्रवात और बार-बार आने वाले तूफानों से स्थानीय लोगों के लिए यह हकीकत स्पष्ट हो गई है, कि मैनग्रोव इस क्षेत्र के लिए बहुत ज़रूरी हैं। खासतौर पर बार-बार आने वाले भयंकर तूफानों के विनाशकारी प्रभावों और समुद्र द्वारा भूमि कटाव से सुरक्षा के लिए। लोगों ने वन विभाग से मैनग्रोव पुनर्जनन के लिए सहयोग की मांग की है, जिसमें वे अपनी ५०० हैक्टेयर भूमि पर वन विभाग के साथ मिलकर मैनग्रोव पुनर्जनन का काम करने के लिए तैयार हैं।

उड़ीसा राज्य सरकार को जापानी बैंक से जंगलों के पुनर्जन्म के लिए ७५० करोड़ रुपए का कर्ज़ मिला है। इसके तहत सरकार ने एक ईको-विकास योजना बनाई है, जिसके अंतर्गत वे मैनग्रोव के पुनर्जीवन में सहयोग करने के लिए तैयार हैं। लेकिन मुमकिन है कि इसमें स्थानीय लोगों की भागीदारी सिर्फ अपनी पुश्तैनी भूमि सरकार को सौंपने तक ही सीमित रह जाएगी। हो सकता है कि इस क्षेत्र को मानवीय प्रभावों से मुक्त घोषित कर दिया जाए - जो उन गांव वालों की मंशा के बिलकुल विपरीत है, जो मैनग्रोव के पुनर्जीवन में पूरा सहयोग देना चाहते हैं। उनकी आशा है कि इससे उन्हें लंबे समय तक सतत आजीविकाएं चलाने और पारिस्थितिकीय लाभ उठाने का मौका मिलता रहेगा।

पूरे राज्य के स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर काम करने वाले 'उड़ीसा संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क' ने ११-१२ मई, २००७ को एक बैठक बुलाई जिसमें उन्होंने यह समझने की कोशिश की कि ईको-विकास परियोजनाओं में स्थानीय लोगों की क्या भूमिका है व उनको इससे क्या फायदा मिलेगा। यह समझना इन लोगों के भविष्य के लिए बहुत आवश्यक है। यह ज़रूरी है कि यह कार्यक्रम लोगों की पारंपरिक आजीविकाओं को कायम रखे व उन्हें सहयोग दे। इन लोगों ने ही इस प्रक्रिया की शुरुआत की है और यह अत्यंत शर्मनाक होगा कि उनके संरक्षण प्रयासों के कारण उन्हें अपनी पुश्तैनी ज़मीन से हाथ धोना पड़े।

स्रोत : वाई. गिरि राव के साथ ई-मेल संपर्क, जून २००७

संपर्क वाई. गिरि राव, सीनियर प्रोग्राम आफिसर, वसुंधरा, प्लाट न. १५, शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१००७, उड़ीसा।

फोन : ०६७४-२५४२०११, ०९४३७१ १०९१५

ई-मेल : ygiri.rao@gmail.com

समुद्र से प्लेट तक एक सफर

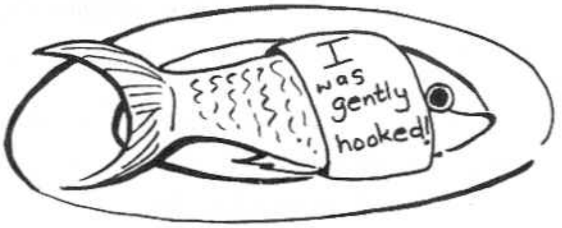

समुद्र से अनियंत्रित तरीके से मछली पकड़ने के कारण समुद्री जीवन की जैवविविधता, विश्व में मछली की उपलब्धता और पारंपरिक मछियारों की आजीविकाओं पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ता जा रहा है। इन प्रक्रियाओं की बढ़ती जागरुकता के चलते, यूरोपीय देशों के कई ग्राहक अब होटलों में मछली खाने से इंकार कर रहे हैं। वे यह आश्वासन चाहते हैं कि जो मछली उन्हें परोसी जा रही हैं वह पर्यावरण व वन्यजीव को न्यूनतम नुकसान से पकड़ी गई हैं ।

एन्ड्रयू पास्को ब्रिटेन में वेस्ट कौर्नवेल की एक पारंपरिक न्यूलिन मछियारे समुदाय से है। यह समुदाय मछली पकड़ने की सतत प्रक्रियाओं और मछलिओं के संरक्षण की ज़रूरत को समझते हैं। मछली पकड़ते वक्त वे निम्नलिखित बातों का ध्यान रखते हैं :

- वे मछली पकड़ने के लिए पारंपरिक कांटों का प्रयोग करते हैं, जो कि मैकरल, पोलाक और समुद्री बास को पकड़ने के लिए सबसे सतत तरीका है। अलग-अलग प्रजाति की मछलियों के लिए अलग-अलग प्रकार के कांटों का प्रयोग किया जाता है। इसमें बड़ी मछलियों के साथ छोटी मछलियां पकड़ में नहीं आती और अगर गलती से कोई छोटी मछली आ भी गई, तो उसे तुरंत छोड़ दिया जाता है।
- वे केवल दिन में मछली पकड़ते हैं और वो भी किनारे से लगभग १ मील के अंदर।
- समुद्री ज्वार-भाटे के कारण वे महीने में दो सप्ताह मछली पकड़ने में असमर्थ रहते हैं।

इन सभी प्रक्रियाओं के कारण ये मछियारों का पकड़ सीमित रहता है और पर्यावरण व वन्यजीव पर कम-से-कम बुरा असर पड़ता है।

अभी तक ग्राहकों के लिए यह पता लगाना मुश्किल था कि कौन सी मछली पर्यावरण को नुक्सान पहुंचाए बिना पकड़ी गई है और कौन सी बड़े जहाज़ों द्वारा पकड़ी गई है। इसके लिए ऐन्ड्रयू पास्को और उनके साथी नाथन डे राज़ारो ने ऐसे लेबल बनाए हैं जिन पर पारंपरिक नांवों का नंबर लिखा होता है। इससे यह आश्वासन रहता है कि मछली 'साउथ वेस्ट हैन्डलाईन फिशरमैन्स असोसिएशन' के सदस्यों द्वारा ही पकड़ी गई है और ग्राहकों को ये यकीन मिलता है कि मछली को पर्यावरण पर न्यूनतम नुक्सान पहुंचाने वाले तरीके से पकड़ा गया है।

साउथ वेस्ट हैन्डलाईन फिशरमैन्स असोसिएशन (स.वे.है.फि.अ.) मछुआरों की एक संस्था है जिसे बीस वर्ष पहले ५० सदस्यों के सहयोग से स्थापित किया गया था। लेबल लगाने की योजना २००५ में स्थापित की गई और शुरुआत में १० छोटे नांव मालिकों ने इसमें भाग लिया। आज ४० से अधिक छोटे नांव मालिक इस लेबल योजना का हिस्सा हैं।

परंपरागत व सतत मछली पकड़ने के तरीकों और आधुनिक लेबल लगाने की प्रक्रिया का मिश्रण स.वे.है.फि.अ. के सदस्यों के लिए एक वरदान साबित हुआ। जहां पहले उन्हें व्यापारियों व ग्राहकों द्वारा दिए गए दामों को स्वीकार करना पड़ता था, वहां आज पारंपरिक कांटे से पकड़ी मछली खरीदने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती है। और वे इस मछली के लिए ऊंची-से-ऊंची कीमत देने के लिए भी तैयार हैं। वर्ष २००६ में कीमतें २००५ के मुकाबले १०-२० प्रतिशत तक ज़्यादा थीं और डेवॆन व डॅरसेट शहरों के मछियारे भी इस योजना में शामिल होना चाहते हैं। लेबल लगी हुई 'कौर्निश सी बास' और 'पोलाक' मछलियां आज पूरे ब्रिटेन के रसोइयों द्वारा खास मांग पर मंगाई जाती हैं। और ज़्यादातर मछली उत्पादक और बेचने वाले अब लेबल लगी हुई मछली ही बेचते हैं।

स्रोत : कैरोल ट्रेविन, 'लोकल हीरोः एन्ड्रयू पास्को', द इकौलोजिस्ट, फरवरी २००७

अंबोसली का नियंत्रण मसाई समुदाय के हाथ

१९७४ के पहले, केन्या में अंबोसली, मसाई समुदाय के लोगों की प्राकृतिक संसाधनों की ज़रूरतों को पूरा करने वाला क्षेत्र था। १९७४ में, यहां वन्यजीवों की संख्या को देखते हुए केन्या सरकार ने इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया। अगले ३० सालों में यह क्षेत्र अमीरी और विलास की मिसाल बन गया जहां कदम कदम पर ५ सितारा होटलों, हवाई पट्टियों और सफारी पर जाने वाली गाड़ियों के माध्यम से प्रति वर्ष ३५ लाख डालर की कमाई होती थी। इस सब की कीमत पहले से ही गरीबी रेखा पार कर चुके मसाई लोगों को चुकानी पड़ी, जिनके मुख्य संसाधनों तक उनकी पहुंच रोक दी गई थी। इसके साथ-साथ उनके उद्यान के आस-पास रहने वाले मवेशी पालने वाले किसानों को भी जंगली जानवरों के हमलों के कारण काफी नुक्सान सहना पड़ा। उनकी फसलों व मवेशियों को जंगली जानवरों ने भारी क्षति पहुंचाई। सरकार और लोगों के बीच बढ़ते अंतर और बड़ती असमानताओं के कारण मसाई लोगों ने शेरों, गैंडों और हाथियों को भाले से मारना शुरु कर दिया। वन्यजीवों की गिरती जनसंख्या ने अधिकारियों को स्पष्ट संकेत दिया कि स्थानीय लोगों की भागीदारी के बिना संरक्षण प्रयास कामयाब नहीं हो सकते। वर्ष २००५ में केन्या के राष्ट्रपति ने निर्णय लिया कि 'अम्बोसली राष्ट्रीय उद्यान' को 'राष्ट्रीय आरक्षित क्षेत्र' में बदल लिया जाए, जिसका नियंत्रण केन्द्रिय सरकार के बदले स्थानीय काउन्टी समिति और मसाई लोगों के हाथ में दे दिया जाए।

स्वाभाविक था कि इस बदलाव के कारण भीषण वाद-विवाद हुआ। इस निर्णय का विरोध करने वालों का कहना था कि इससे क्षेत्र की जैवविविधता और वन्यजीव जनसंख्या पर गलत प्रभाव पड़ेगा। परंतु इस प्रस्ताव को रखने वालों का कहना था कि यह एक आवश्यक कदम है और समय की ज़रूरत भी।

जौन वाईताका का कहना है कि सही सामाजिक, राजनैतिक व कानूनी वातावरण में अम्बोसली को मसाई लोगों को सौंप देने से प्राकृतिक संसाधनों के सतत् उपयोग, गरीबी उन्मूलन और वन्यजीव संरक्षण अधिक प्रभावकारी होने की संभावना है। जौन के अनुसार, अभी वह दिन बहुत दूर है जब इस प्रयास को हर रूप से एक सफल प्रयास कहा जा सकेगा। ऐसा सफल प्रयास जिसमें सभी भागेदारों को उचित और बराबर लाभ मिल रहा हो और वन्यजीवों का संरक्षण बखूबी हो रहा हो। इस सफलता को पाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा :

- उचित भूमि नियोजन नीतियां
- प्राकृतिक संसाधनों का सतत उपयोग
- मानव-वन्यजीवों के बीच के संघर्ष का समाधान
- अभ्यारण्य से मिले लाभों का सभी भागेदारों में तुल्य वितरण
- अभ्यारण्य का लोकतांत्रिक व ज़िम्मेदारीपूर्ण नियोजन
- सभी भागेदारों के अधिकारों, ज़िम्मेदारियों व भूमिकाओं का स्पष्टीकरण

इस सूचि में उन्होंने संस्थागत क्षमताओं को बढ़ाने, व्यापार कार्यकुशलता बढ़ाने और प्रबंधन क्षमताओं को बढ़ाने की भी बात की है।जो भी ढांचे व प्रक्रियाएं लागू की जाती हैं, यह ज़रूरी है कि वे स्थानीय लोगों, वन्यजीवों, निवेशकों और पर्यटकों को सुरक्षा प्रदान करते हुए संरक्षण का प्रोत्साहन करें। लेखक ने इस प्रयास का अध्ययन करने की ओर भी इशारा किया है, जिससे कि वन्यजीव संरक्षण व मसाई लोगों को इससे मिले फायदों का आंकलन किया जा सके।

स्रोत : जौन वाइताका, 'हू शुड मैनेज पैराडाईज़', द मैगज़ीन आफ द वर्ल्ड कन्ज़रवेशन यूनियन, जनवरी २००७

नए अंग्रेज़ी प्रकाशन

'हाओ मच शुड अ परसन कन्ज़्यूम? थिंकिंग थ्रू द ऐन्वायरनमैन्ट'

लेखक : रामचंद्र गुहा

प्रकाशक : परमानैन्ट ब्लैक, दिल्ली, २००६

यह किताब भारत व अमरीका इन दो बड़े लोकतांत्रिक देशों में पर्यावरणवाद के इतिहास की तुलना करती है। स्टैनिस्लौस और नर्मदा आंदोलनों में बाहरी समानताओं और आंतरिक भिन्नताओं के ज़रिए लेखक दोनों तरह के पर्यावरणवाद की मौलिक भिन्नताओं को दर्शाने का प्रयत्न करते हैं। निष्कर्ष में लेखक एक ऐसे अध्ययन की प्रस्तावना करता है जो इन दोनों देशों के पर्यावरण संबंधी पक्षपाती व अधूरी विचारधाराओं से अलग, एकीकृत, सम्मिलित और सैद्धांतिक हो। यह किताब काफी रुचिपूर्ण है जिसमें लेखक ने अपने २० साल के अध्ययन से उभरी समझ को खुलकर बांटा है।

'इंडियाज़ वाईल्डलाईफ हिस्ट्री'

लेखक : महेश रंगराजन

प्रकाशक : परमानैन्ट ब्लैक, रणथंभोर फाउंडेशन के साथ

इस किताब में लेखक ने भारत के वन्यजीवन के इतिहास के विषय में हमारी जानकारी की एक बड़ी खाई को पूरा किया है। यह किताब पाठकों को एक ऐसे ऐतिहासिक सफर पर ले जाती है, जिसके कारण देश के वन्यजीवन की स्थिति आज इस स्तर पर है। इसमें पुरातन समय की चर्चा है - जब जंगल के प्रति एक अंदरूनी डर व सम्मान था और प्रकृति के साथ उसी प्रकार का संबंध भी था। इसके बाद मुगल व अंग्रेज़ों के समय में वन्यजीवन के इतिहास को देखा गया है। इसके बाद १९५० से शुरू हुई संरक्षण प्रणाली का वर्णन है, जहां देश के अभिजात वर्ग और सलीम अली, ई.पी.जी. और एम. कृष्णन जैसे अग्रणियों ने वन्यजीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदला। फिर किताब में 'वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, १९७२' और १९७३ में ' प्रौजेक्ट टाइगर' जैसी योजनाओं के विषय में भी चर्चा की गई है।

साथ ही, 'इंडियाज़ वाईल्डलाईफ हिस्ट्री' आम लोगों और जंगल के परस्पर संबंध के विषय में भी बात करती है। सदियों से जहां समुदाय जंगल के प्रमुख संरक्षणकर्ता रहे, वहीं वे इन्हीं संसाधनों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर भी रहे हैं। अतः किताब में उन सभी कारणों पर दृष्टि डाली गई है जिनके कारण आज की सरकारी संरक्षण प्रक्रियाओं को स्वरूप मिला है। इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि हांलांकि इन संरक्षण प्रक्रियाओं के कारण भारत की वन्यजीव संख्या पर कुछ अच्छा असर पड़ा है, परंतु इन वन्यजीवों व उनके आवासों का नियोजन प्रभावी तरीके से करने में ये प्रक्रियाएं पुरी तरह सफल नहीं हो पायीं हैं। खासकर, इसलिए क्योंकि इस संरक्षण प्रक्रिया ने हज़ारों लोगों की जीवनयापी प्रक्रियाओं को अनदेखा कर उनके लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर दी हैं। लेखक ने एक आशापूर्ण स्थिति से किताब का अंत किया है - कि आज का भारत एक जीवंत लोकतंत्र है, जहां के निवासी जागृत हैं, जहां पारंपरिक व आधुनिक दोनों तरह का ज्ञान मौजूद है और आगे बढ़ने का संकल्प भी।

ये किताब उन सभी को पढ़नी चाहिए जो ये समझना चाहते हैं कि आज के संरक्षण संबंधी कानून और नीतियां कैसे बनीं हैं और स्थानीय लोगों को भविष्य में देश के वन्यजीव संरक्षण का हिस्सा क्यों बनना चाहिए।

'वाटरस्केप्स'

संपादक : अमिता बाविस्कर

प्रकाशक : परमानैन्ट ब्लैक, दिल्ली, २००७

संपादक के रूप में अमिता बाविस्कर ने इस पुस्तक में कई मानव-शास्त्रियों, इतिहासकारों और समाज-वैज्ञानिकों की प्रारंभिक शोध को इकट्ठा कर पानी की राजनीति पर चर्चा की है। किताब को ३ भागों में बांटा गया है। पहले भाग में, स्थानीय परिस्थिति, सामाजिक संरचना व कृषि तकनीकों के आपसी संबंध की चर्चा की गई है। इस संबंध के इर्द-गिर्द पानी की राजनीति कई बार बनी और बिगड़ी है। दूसरे भाग में, पानी के निजिकरण के उभरते हुए विकल्पों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखा गया है। इस भाग में, विकेन्द्रीकृत जल प्रबंधन में विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का विश्लेषण और बदलावों की आवश्यकता पर बारीकी से चर्चा की गई है। आखिरी भाग में इस बात का विश्लेषण किया गया है कि किस तरह वास्तविक स्थिति का सामना होने के बाद, आने वाले अनुभवों के कारण, जल प्रकल्पों व तकनीकों में बदलाव आया है।

यह संस्करण पानी से जुड़ी राजनीति पर एक गहरे के बाद प्रकाशित हुआ है। इसे उन लोगों को ज़रूर पढ़ना चाहिए जो पानी की राजनीति व प्रबंधन में रुचि रखते हैं, और उन्हें भी जो पर्यावरण की राजनीति और विकास को समझने में रुचि रखते हैं।

'ईकोलौजिकल जरनीज़ : द साइंस एंड पौलिटिक्स आफ कन्ज़रवेशन इन इंडिया'

लेखक : माधव गाडगिल

प्रकाशक : परमानैन्ट ब्लैक, दिल्ली, २००५

निबंधों का यह संकलन बहुत ही रुचिपूर्ण और आकर्षक रूप में लिखा गया है। यह हमें मजबूर करता है कि हम प्रकृति के अंदरूनी ज्ञान को गंभीरता से समझें और जानें कि हमारी गतिविधियां कैसे उस पर असर डालती हैं। लेखक का कहना है, कि आज चलाई जा रही संरक्षण की प्रक्रियाओं से हट कर हमें वन्यजीव संरक्षण के लिए एक अधिक विवेकपूर्ण प्रक्रिया बनानी होगी - ऐसी प्रक्रिया जहां संरक्षण केवल अभिजात वर्ग के मनोरंजन के लिए ही न हो बल्कि स्थानीय लोगों की परंपरागत और आधारभूत ज़रूरतों को भी पूरा करे। साथ ही, वे देश की अर्थव्यवस्था में भागेदार बनें, देश की समृद्ध जैवविविधता के प्राकृतिक वंश को जीवित रखें और वैज्ञानिकों के लिए शोध का स्थल बनें। इसी भाग में, वे इंसान के उपभोग की वस्तुओं में बढ़ती रुचि और प्रकृति पर उसके नकारात्मक प्रभावों के विषय में भी बात करते हैं।

तीसरे भाग में, वे भारत में वर्तमान विकास के ढांचों की बात करते हैं, जो अमीर किसानों, शहरी अभिजात वर्ग और विकसित देशों की ओर हो रहे ऊर्जा, जल एवं कच्चे माल के इकतरफा बहाव को सुनिश्चित करता है। और इसकी कीमत उन लोगों को चुकानी होती है, जो बेहद मुश्किल परिस्थितियों में भारत के ग्रामीण इलाकों में रहते हैं।

चौथे और अंतिम भाग में, वे कई उदाहरणों द्वारा यह साबित करते हैं कि देश की प्राकृतिक संपदा को बचाने का एकमात्र ज़रिया है कि हम मान लें कि भारतीय प्राकृतिक संपदा को संभालने वाली अफसरशाही के पास न तो उपयुक्त जानकारी है और न ही देश की संपत्ति की देख-रेख करने की मंशा। और देश की प्राकृतिक संपदा के स्वाभाविक संरक्षक वे लोग हैं जिन्होंने पीढ़ियों से प्रकृति के साथ रिश्ता बनाया हुआ है और जिन्हें अपने पूर्वजों से मिले ज्ञान के कारण अपने आस-पास के संसाधनों के साथ मिलजुलकर रहना आता है।

समुदाय व संरक्षण
अंक १, नं.२, जुलाई २००७
संपादक : एरिका तारापोरवाला
परामर्श : नीमा पाठक, आशीष कोठारी व पंकज सेख़सरिया
संपादकीय सहयोग : अनुराधा अर्जुनवाडकर
पुस्तक विश्लेषण : ऐनी जोसफ
चित्रांकन : मधुवंती अनंतराजन
अनुवाद : निधि अग्रवाल
निर्माण : कल्पवृक्ष, अपार्टमेन्ट ५ श्री दत्तकृपा, ९०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे-४११००४
फोन : ९१-२०-२५६७५४५०,
फोन/फैक्स : ९१-२०-२५६५४२३९
ईमेल : kvoutreach@gmail.com
वेबसाइट : www.kalpavriksh.org
आर्थिक सहयोग : मिज़रिओर, जर्मनी

निजि वितरण के लिए

प्रकाशित विषयवस्तु

सेवा में,